IJAER/ July-August 2022/Volume-11/Issue-4 ISSN: 2278-9677
International Journal of Arts & Education Research

जैन आचार्यों का हिंदी साहित्य में योगदान

डॉ देवीशंकर शर्मा

सह आचार्य जैनोलॉजी

एसबीडी राजकीय महाविद्यालय सरदारशहर

सार

यद्यपि जैनधर्म का प्रचार बड़ा सीमित रहा और वह कभी प्रभावशाली आन्दोलन नहीं हो सका, परन्तु हमारे देश को इसकी सांस्कृतिक देन बहुत बड़ी है। इसकी सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण देन साहित्य तथा कला क्षेत्र में देखने को मिलती है। जैन विद्वानों ने विभिन्न कालों में लोकभाषाओं में ग्रन्थों की रचना करके इन भाषाओं के परिवर्द्धन तथा परिमार्जन में बड़ा योग दिया। अधिकांश जैन साहित्य प्राकृत भाषा में लिखे हुए हैं, जिससे प्राकृतिक भाषा के विकास में बड़ा योग मिला। राजपूत काल में अनेक जैन आचार्यों ने प्राकृत तथा अपभ्रंश भाषाओं में कई ग्रन्थ लिखे। जैनधर्म का सबसे प्रसिद्ध साहित्य 'श्रुतंग' मागधी भाषा में लिखा हुआ है। इसमें बारह अंगों का संकलन किया गया है, जो जैनधर्म के आधार हैं। प्राचीन जैन धर्मग्रन्थों और जैन कविता पर जैनियों द्वारा लिखित भाष्य जैन महाराष्ट्री में मिलता है। ईस्वी संवत् के पश्चात् संस्कृत भाषा धीरे-धीरे उत्तर भारत में फैलने लगी। इस भाषा को पहले बौद्धों ने और फिर जैन लेखकों ने अपना लिया। जैन साहित्य का आधे से अधिक सहित्य मध्यकालीन दार्शनिक विचारों से भरा हुआ है। इसके रचयिताओं ने इन ग्रन्थों को लिखते समय नैतिक कथाओं के वर्णन, व्याकरण और कोषरचना में अपने आपको सिद्धहस्त और महान् सिद्ध करने की चेष्टा की है। पञ्चतंत्रों पर लिखे गये दो आलोचना ग्रन्थ जैनियों के प्रभाव के द्योतक हैं।

सूचक शब्द: आदि कालीन साहित्य वर्गीकरण, हिंदी साहित्य पर जैन धर्म का प्रभाव

प्रस्तावना

साहित्य के संबंध में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का मत है कि, "जबकि प्रत्येक देश का साहित्य वहाँ की जनता की चित्तवृत्ति का संचित प्रतिबिम्बत होता है। तब यह निश्चित है कि जनता की चित्तवृत्ति के परिवर्तन के साथ-साथ साहित्य के स्वरूप में भी परिवर्तन होता चला जाता है।" अर्थात् साहित्य किसी भी देश और काल के मानव समाज की सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक व धार्मिक स्थितियों का ही दिग्दर्शन नहीं कराता वरन् मानव समाज की मनःस्थितियों में होने वाले परिर्वतनों का भी परिचायक होता है। हिन्दी साहित्य को आज हम विकास की जिस अवस्था में देखकर गौरव का अनुभव कर रहे है, उसे अपने विकास की प्रारम्भिक अवस्था में देखकर, जबकि हिन्दी भाषा का स्वरूप भी निर्मित नहीं हुआ था, धर्म का पोषण प्राप्त हुआ। तदयुगीन साधु-सन्तों ने अपने धर्म का प्रचार के लिए जनभाषा को ग्रहण किया, जिससे कि उनका धर्म लोक के मध्य सहजता से ग्राह्य हो सके। इन साधु सन्तों में बौद्ध अनुयायी, जैन साधक और नाथ पंथी प्रमुख थे। यद्यपि इनकी भाषा अटपटी और अविकसित थी, किन्तु यह सत्य है कि इन्होंने लेखन की परिपाटी आरम्भ करने में योगदान दिया। हिंदी साहित्य पर जैन धर्म का प्रभाव आचार्य रामचन्द्र शुक्ल हिन्दी साहित्य का इतिहास लिखते समय इन धर्म साधकों की धार्मिक और उपदेशात्मक कृतियों को साम्प्रदायिक कहकर खारिज कर देते है और उन्हें साहित्य की कोटि में नहीं रखते। "अपभ्रंश की पुस्तकों में कई तो जैनों के धार्मिक-तत्त्व निरूपण संबंधी जो

कि साहित्य की कोटि में नहीं आती।" दूसरी ओर रामकुमार वर्मा हिन्दी साहित्य के विकास में इन जैन साधकों के योगदान को स्वीकार करते हुए लिखते हैं, "वास्तव में हिन्दी साहित्य की उत्पत्ति और विकास में जैन धर्म का बहुत हाथ रहा है। अपभ्रंश में ही जैनियों के मूल सिद्धान्तों की रचना हुई। अपभ्रंश का विकास हिन्दी में होने के कारण हिन्दी की प्रथमावस्था में भी इन सिद्धान्तों पर रचनाएँ हुई। अतएव भाषा विज्ञान की दृष्टि से ही नहीं वरन् हिन्दी के प्रारम्भिक रूप का सूत्रपात करने में भी जैन साहित्य का महत्त्व है।" डॉ. रामकुमार वर्मा के अतिरिक्त डॉ. नगेन्द्र, पं. चन्द्रधर शर्मा गुलेरी आदि विद्वान भी हिन्दी को अपभ्रंश से विकसित और अपभ्रंश को पुरानी हिन्दी मानते हैं। डॉ. नगेन्द्र का मत है कि, "अपभ्रंश अपने मूल रूप में ही पन्द्रह शताब्दी तक साहित्य की भाषा बनी रही, तथापि आठवीं शताब्दी से ही बोलचाल की भाषा पृथक होकर उसके समानान्तर साहित्य रचना का माध्यम बन गयी थी। इसी भाषा को कुछ विद्वानों ने उत्तर 'अपभ्रंश' या 'पुरानी हिन्दी' कहा है और कुछ विद्वानों ने 'अवहट्ठ' नाम दिया है।" फिर वे आगे लिखते हैं कि "डॉ. भोला शंकर व्यास ने हिन्दी के आरम्भिक रूप को ही 'अवहट्ठ' कहा है और यही अधिक समीचीन है क्योंकि जिसे कुछ विद्वान 'अवहट्ठ' कहना चाहते हैं, वहीं अपभ्रंश का ऐसा रूप है जिसमें हिन्दी की सभी आरम्भिक प्रवृत्तियाँ एक साथ मिलती है।" गुलेरी जी का भी मत है कि "वैसे अपभ्रंश को पुरानी हिन्दी ' कहना अनुचित नहीं।" यद्यपि गुलेरी का यह मत अधिकांश विद्वानों को मान्य नहीं हुआ । कहना चाहिए कि हिन्दी का प्रारम्भिक रूप अपभ्रंश का माध्यम बनाया। डॉ. रामकुमार वर्मा का मत यहाँ सार्थक प्रतीत होता है कि "अर्धमागधी और नागर अपभ्रंश से निकलने वाली भाषा हिन्दी के प्रारम्भिक रूप की छाप लिए हुए है ।" जैन धर्म के 24वें तीर्थंकर महावीर स्वामी ने अपना धर्म प्रचार करने के लिए अपभ्रंश भाषा को ही अपनाया। इसलिए जैन मुनियों ने भी अपभ्रंश भाषा में अनेकानेक ग्रंथों की रचना की। इन ग्रन्थों में सत्य, अहिंसा, वैराग्य आदि नीति प्रधान विषयों की प्रमुखता है परन्तु "कुछ जैन कवियों ने हिन्दुओं की रामायण और महाभारत की कथाओं से राम और कृष्ण के चरित्रों को अपने सिद्धान्तों और विश्वासों के अनुरूप अंकित किया है। इन पौराणिक कथाओं के अतिरिक्त जैन महापुरुषों के चरित्र लिखे गये तथा लोक प्रचलित किये गये हैं।" डॉ. नगेन्द्र जैन साहित्य को विविध शैलियों में विकसित मानते हुए लिखते हैं कि जैन "कवियों की रचनाएँ आचार, रास, फागु, चरित आदि विभिन्न शैलियों में मिलती हैं आचार शैली के जैन-काव्यों में घटनाओं के स्थान पर उपदेशात्मकता को प्रधानता दी गई है।... लोक जीवन में भी श्रीकृष्ण की लीलाओं के लिए रास को प्रभावशाली रचना शैली का रूप दिया।" इस प्रकार जैन साधकों ने प्रचुर मात्रा में साहित्य लिखा। जो धार्मिक तो था, परन्तु उससे हिन्दी साहित्य लाभान्वित भी हुआ और प्रभावित भी हुआ ।

उद्देश्य:

हिंदी साहित्य पर जैन धर्म का प्रभाव

हिन्दी साहित्य का इतिहास

आदिकालीन साहित्य वर्गीकरण:

जैन साहित्य भगवान महावीर का जैन साहित्य में महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है। भगवान महावीर ने अपने धर्म का प्रचार लोकभाषा के माध्यम से किया। पहले जैनधर्म का प्रचार एवं प्रसार उत्तरी भारत में अधिकाधिक रूप से फैला। गुजरात मे इसकी प्रधानता 8 वीं शताब्दी से 13 वीं शताब्दी तक बनी रही। वहाँ के चालुक्य, राष्ट्रकूट और सोलंकी राजाओं पर इसका पर्याप्त प्रभाव रहा है। भगवान् महावीर का जैनधर्म हिन्दू के सदाचारों के अधिक समीप है। जैन धर्म का ईश्वर श्रष्टि नियामक नहीं है। वह चित् एवं आनन्द का स्रोत है। प्रत्येक व्यक्ति अपनी साधना और पौरूष से परमात्मा का रूप धारण कर सकता है। इस धर्म की महत्त्वपूर्ण विशेषता यह थी कि इसमें ब्रह्मचर्य, अस्तेय और अपरिग्रह का विशेष महत्त्व है। प्रारम्भिक जैन साहित्य में दोहा चौपाई पद्धति पर

चरित निर्माण हुआ। यही परम्परा आगे चलकर सूफी कवियों द्वारा ग्रहण कर ली गई। डा० वार्ष्णेय ने लिखा है, 'जैनधर्म की दोहा-चौपाई पद्धति आगे चलकर सूफी कवियों, तुलसी आदि द्वारा अपनाई गई। इन प्रारंभिक रचनाओं के आधार पर ही पुरानी हिंदी का जन्म और पीछे खींच ले जाया जाता है।"

काव्य या आख्यानक काव्य

जैन आचार्यों ने प्राकृत के अतिरिक्त अपभ्रंश में प्रचुर रचनाएँ लिखीं। इनका साहित्य मूलतः धर्म-प्रचार का साहित्य है, किन्तु साहित्यिक सौष्ठव के अंश पर्याप्त मात्रा में मिल जाते हैं। तत्कालीन व्याकरणादि ग्रंथों में इस साहित्य के उद्धरण मिलते हैं। स्वयंभू पुष्पदंत, घनपाल जैसे जैन कवियों ने हिन्दुओं की रामायण और महाभारत की कथाओं के राम और कृष्ण के चरित्रों को अपने धार्मिक सिद्धान्तों और विश्वासों के अनुरूप अंकित किया है। इन पौराणिक कथाओं के अतिरिक्त जैन तीर्थकारों एवं महापुरूषों के चरित्र लिखे गये तथा लोक-प्रचलित प्रसिद्ध नैतिकतावादी आख्यान भी जैन धर्म के रंग में रंग कर प्रस्तुत किये गये हैं। जैन साहित्य में शान्तरस की प्रधानता रही।

साहित्य को जैन मुनियों का योगदान

हिंदी साहित्य एवं भाषा को जैन आचार्यों ने महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है। अपभ्रंश भाषा को जैन - साहित्य ने न केवल भाषा विकास की दृष्टि से ही योगदान दिया है, बल्कि भावों, विचारों, जीवन-दर्शन संबंधी भी कुछ ऐसा योगदान दिया है जिससे आदिकालीन हिंदी के रासो ग्रंथों तथा चरित - काव्यों पर विशेष प्रभाव तो काव्य रूप की दृष्टि से पड़ा, साथ ही जैनियों के जीवन-दर्शन ने भी संतों को अन्तर्मुखी प्रवत्ति की ओर प्रवत्त किया।

हिंदी साहित्य पर जैन धर्म का प्रभाव

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल हिन्दी साहित्य का इतिहास लिखते समय इन धर्म साधकों की धार्मिक और उपदेशात्मक कृतियों को साम्प्रदायिक कहकर खारिज कर देते हैं और उन्हें साहित्य की कोटि में नहीं रखते। "अपभ्रंश की पुस्तकों में कई तो जैनों के धार्मिक-तत्त्व निरूपण संबंधी जो कि साहित्य की कोटि में नहीं आती।" दूसरी ओर रामकुमार वर्मा हिन्दी साहित्य के विकास में इन जैन साधकों के योगदान को स्वीकार करते हुए लिखते हैं, "वास्तव में हिन्दी साहित्य की उत्पत्ति और विकास में जैन धर्म का बहुत हाथ रहा है। अपभ्रंश में ही जैनियों के मूल सिद्धान्तों की रचना हुई। अपभ्रंश का विकास हिन्दी में होने के कारण हिन्दी की प्रथमावस्था में भी इन सिद्धान्तों पर रचनाएँ हुई। अतएव भाषा विज्ञान की दृष्टि से ही नहीं वरन् हिन्दी के प्रारम्भिक रूप का सूत्रपात करने में भी जैन साहित्य का महत्त्व है।

डॉ. रामकुमार वर्मा के अतिरिक्त डॉ. नगेन्द्र, पं. चन्द्रधर शर्मा गुलेरी आदि विद्वान भी हिन्दी को अपभ्रंश से विकसित और अपभ्रंश को पुरानी हिन्दी मानते हैं। डॉ. नगेन्द्र का मत है कि, "अपभ्रंश अपने मूल रूप में ही पन्द्रह शताब्दी तक साहित्य की भाषा बनी रही, तथापि आठवीं शताब्दी से ही बोलचाल की भाषा पृथक होकर उसके समानान्तर साहित्य रचना का माध्यम बन गयी थी। इसी भाषा को कुछ विद्वानों ने उत्तर 'अपभ्रंश' या 'पुरानी हिन्दी कहा है और कुछ विद्वानों ने 'अवहट्ठ' नाम दिया है।" फिर वे आगे लिखते हैं कि "डॉ. भोला शंकर व्यास ने हिन्दी के आरम्भिक रूप को ही 'अवहट्ठ' कहा है और यही अधिक समीचीन है क्योंकि जिसे कुछ विद्वान 'अवहट्ठ' कहना चाहते हैं, वहीं अपभ्रंश का ऐसा रूप है जिसमें हिन्दी की सभी आरम्भिक प्रवृत्तियाँ एक साथ मिलती है।"

"वैसे अपभ्रंश को गुलेरी जी का पुरानी हिन्दी को ही अपनाया। इसलिए जैन मुनियों ने भी अपभ्रंश भाषा में अनेकानेक ग्रंथों की रचना की। इन ग्रन्थों में सत्य, अहिंसा, वैराग्य आदि नीति प्रधान विषयों की प्रमुखता है परन्तु "कुछ जैन कवियों ने हिन्दुओं की रामायण और महाभारत की कथाओं से राम और कृष्ण के चरित्रों को अपने सिद्धान्तों और विश्वासों के अनुरूप अंकित किया है। इन पौराणिक कथाओं के अतिरिक्त जैन महापुरुषों के चरित्र प्रचलित किये गये हैं।" डॉ. नगेन्द्र जैन साहित्य को विविध शैलियों में विकसित मानते हुए लिखते हैं कि जैन "कवियों की रचनाएँ आचार, रास, फागु, चरित आदि विभिन्न शैलियों में मिलती हैं आचार शैली के जैन-काव्यों में घटनाओं के स्थान पर उपदेशात्मकता को प्रधानता दी गई है।.लोक जीवन में भी श्रीकृष्ण की लीलाओं के लिए 'रास' को प्रभावशाली रचना शैली का रूप दिया।" इस प्रकार जैन साधकों ने प्रचुर मात्रा में साहित्य लिखा। जो धार्मिक तो था, परन्तु उससे हिन्दी साहित्य लाभान्वित भी हुआ और प्रभावित भी हुआ। हिन्दी के कवियों में स्वयंभू देव को प्रथम कवि माना जा सकता है। इनका समय सं. 734 से 1016 के मध्य निर्धारित किया गया है। 'पउम चरिउ (पदम् चरित्र) नामक इनका प्रसिद्ध ग्रंथ है। जिसमें हिन्दी का प्राचीन रूप देखा जा सकता है। यह ग्रंथ जैन रामायण के नाम से जाना जाता है। और इसी आधार पर स्वयंभू देव अपभ्रंश के वाल्मीकि या महाकवि कहे जाते हैं,

निष्कर्ष

इस प्रकार कहा जा सकता है कि हिन्दी साहित्य के विकास में जैन कवियों और जैन धर्म का महत्त्वपूर्ण योगदान है। अपभ्रंश भाषा में जैन साधकों और कवियों ने अनेकानेक ग्रंथ लिखे, जिनका हिन्दी साहित्य पर पर्याप्त प्रभाव पड़ा। यह प्रभाव केवल भाषा वैज्ञानिक दृष्टि से ही नहीं अपितु अन्य रूपों में भी दिखाई देता है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी जैन साहित्य की महत्ता पर प्रकाश डालते हुए लिखते हैं कि "इन चरित- काव्यों के अध्ययन से परवर्ती काल के हिन्दी साहित्य के कथानकों, कथानक रूढियों, काव्यरूपों, कवि प्रसिद्धियों, छन्दयोजना, वर्णनशैली, वस्तुविन्यास, कवि कौशल आदि की कहानी बहुत स्पष्ट हो जाती है। इसलिए इन काव्यों से हिन्दी साहित्य के विकास के अध्ययन में बहुत महत्त्वपूर्ण सहायता प्राप्त होती है। "

संदर्भ

1. http://mdudde.net/pdf/study_material_DDE/ba/BA%20III/hindi/Hindi%20Sahitya%20ka%20itihas.pdf
2. https://www.examtricksadda.com/2022/07/jain-sahitya-kavi-unki-rachnaye.html
3. https://www.vyakarangyan.com/2022/07/jain-sahitya-aur-muniyo-ka-yogdan.html
4. https://www.drishtiias.com/to-the-points/paper1/jainism-3
5. https://www.gyanodayaindia.com/history-of-jainism/
6. https://www.examtricksadda.com/2022/07/jain-sahitya-kavi-unki-rachnaye.html